इकाई 2 पुराणों में वास्तु

इकाई की संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 वास्तुविद्या का सामान्य परिचय

2.3 वास्तुविद्या की पौराणिक पृष्ठभूमि

2.4 विविध पुराणों में वास्तु का स्वरूप

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- वास्तुशास्त्र के पौराणिक पृष्ठभूमि को बताने में समर्थ होंगे।
- कतिपय पुराणों में वर्णित वास्तु के स्वरूप को प्रकाशित करने में दक्ष होंगे।
- वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों को व्याख्यायित करने में कुशल होंगे।
- पुराणों में वर्णित भूमिचयन की विधि को विवेचित करने में समर्थ होंगे।
- पुराणों में वर्णित भूमि मापन की पद्धति को उद्घाटित करने में कुशल होंगे।
- विविध पुराणों के अनुसार द्विशाल गृह लक्षण को वर्णित करने में दक्ष होंगे।
- वास्तुविद्या के उद्देश्यों को प्रकाशित करने में कुशल होंगे।
- पुराणों में वर्णित वास्तु के प्रयोजनों को बताने में समर्थ होंगे।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय स्थापत्य और शिल्पशास्त्र की परम्परा गौरवशाली रही है। इसका अतीत जितना गौरवमण्डित रहा है, वर्तमान् उतना ही विकासमान और भविष्य उससे कहीं उज्ज्वल है। इस देश ने समय-समय पर अपनी संस्कृति के जितने आत्माभिमानी अध्यायों की रचना की है। वह परा- अपरा दोनों ही रूपों में अद्भुत और अविस्मरणीय है। पूरा देश ही किसी जीवन्त स्मारक से कम नहीं है। यहाँ कर्म का वैशिष्ट्य विचार रहा है। इसलिए इसे कर्मभूमि कहा है। अन्य सभी देश भोगभूमि हों लेकिन यह कर्मभूमि है, जहाँ जन्म की अभिलाषा देवताओं ने भी की है-

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमर्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

यहाँ वास्तु को अद्भुत महत्व दिया गया है। ऋषियों की प्रज्ञा ने इसे इष्टापूर्त कर्म के रूप में स्वीकृत किया है और इसके लिए आवश्यक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। वेदों से लेकर परवर्ती पुराणों तक इससे सम्बन्धित कर्तव्यों का गुणगान किया और इसके नियमों का निरूपण किया। ऋग्वेद (7, 54, 3) के ऋषियों ने यही कामना की है कि हे वास्तोष्पते! हम आपसे सुखकर, रमणीय और ऐश्वर्ययुक्त स्थान प्राप्त करें। हमें प्राप्त और प्राप्त होने वाले धन-वैभव की आप रक्षा करें। हमें सदा कल्याणकारी साधनों-उपस्करों से सुरक्षित रखें। प्रस्तुत इकाई में आपलोग पुराणों में वर्णित वास्तु विद्या के स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

2.2 वास्तुविद्या का सामान्य परिचय

मानव की तीन मूलभूत आवश्यकताएं भोजन,वस्त्र और मकान है। भवन का स्थान मानव जीवन के लिए अन्यतम है, क्योंकि हमारे संस्कृत शास्त्र में कहा गया है कि गृहस्थों की सभी क्रियाएँ गृह के बिना सफल नहीं होती। जैसा कि भविष्यपुराण में वर्णित है-

"गृहस्थस्य क्रियास्सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना"।

घर,भवन,मकान अथवा प्रासाद निर्माण करने की प्राचीनतम पद्धति को हम वास्तुशास्त्र के नाम से जानते हैं। भूमि पर अच्छी प्रकार से अपनी अनुकूलता के अनुसार निवास बनाने की प्रक्रिया को वास्तुविद्या कहते हैं। वास्तुग्रन्थों में कहा गया है कि पृथ्वी मुख्य वास्तु है, उस पर जो जन्म लेते हैं, उनके आश्रय हेतु जो भवन आदि बनाये जाते हैं, वे भी गौण वास्तु कहे जाते हैं। जैसा कि समरांगणसूत्रधार में उल्लिखित है -

भूरेव मुख्यं वास्तु तत्र जातानि यानिहि।
प्रासादादीनि वस्तूनि वस्तुत्वात् वास्तुसंश्रयात् ॥

वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र तथा स्थापत्यवेद इत्यादि 'वास्तुविद्या' के ही पर्याय हैं। अंग्रेजी भाषा में इसे Architecture कहा जाता है। अंग्रेजी भाषा का यह शब्द लगभग सोलहवीं शताब्दी में लैटिन भाषा के Architectura शब्द से लिया गया है। यह शब्द संस्कृत के 'आर्किदक्ष्तौर्य' शब्द का अपभ्रंश है। जो कि आर्कि + दक्ष् + तौर्य से बना है। संस्कृतभाषा में तौर्य का अर्थ शिल्प, चातुर्य, विद्या या कला आदि होता है। 'दक्ष' धातु का शाब्दिक अर्थ चतुराई प्रदर्शित करना तथा आर्कि' शब्द का अर्थ सूर्य पुत्र मनु होता है। यह शब्द देवशिल्पी त्वष्टा का भी द्योतक है, जिन्होंने भगवान् सूर्य को अपनी शिल्पकला द्वारा छोटा तथा सुन्दर बना दिया था, जिससे उनकी उग्रता में कमी आ गयी थी और वे भूवासियों के लिये सहन करने योग्य हो गये थे। अत एव जिस विद्या का प्रचार-प्रसार मनु के द्वारा मानवमात्र के कल्याण के लिये सूर्य की ऊर्जा का यथोचित समुपयोग करते हुए मानवों को इस अवनि पर बसाने में किया गया, उसे आर्किदक्ष्तौर्य' अर्थात् विवस्वान् मनु की निपुणता की विद्या कही गयी। संस्कृत के उपरोक्त शब्द से लैटिन भाषा तथा अंग्रेजी भाषा के ऊपर लिखे दोनों शब्द बने हुये हैं।

वास्तुशास्त्र का उद्गम वेदों से हुआ है। प्राचीन काल में इसे स्थापत्य वेद के नाम से जाना जाता था। स्थापत्य वेद या वास्तुशास्त्र, अथर्ववेद का एक उपवेद है। अनेक पुराणों जैसे

मत्स्यपुराण,अग्निपुराण, वायुपुराण इत्यादि में वास्तु के उल्लेख मिलते हैं। विश्वकर्मा और मय के साथ-साथ अष्टारह आचार्य ऋषि जैसे प्रभु बृहस्पति, नारद, अत्रि इत्यादि वास्तु के मुख्य प्रवर्तक माने गए हैं। वास्तु विषय शास्त्रीय ग्रंथों जैसे मानसार, मयमतम्, समरांगणसूत्रधार, विश्वकर्माप्रकाश आदि ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। कोटिल्य के अर्धशास्त्र, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, जैन एवं बौद्ध ग्रन्थ , तंत्र तथा वृहत् संहिता आदि ग्रंथों में वास्तु विषयक महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध है। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर आज तक हमारे देश में वास्तुशास्त्र के उद्धव एवं विकास की दृष्टि से पर्याप्त सामग्री मिलती है। वास्तुशास्त्र ज्ञान विज्ञान का प्राचीन शास्त्र है। वास्तुशास्त्र में सभी प्रकार के भूखण्ड निर्माण संरचनाएं और रचनात्मक ऊर्जा समाविष्ट है। जो शास्त्र भूमि और भवन में रहने वाले लोगों को अधिक सुख शान्ति सुरक्षा और समृद्ध होने के नियम, सिद्धान्तों तथा भविष्य का व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करता है, वही वास्तुशास्त्र है। आजकल की जिन्दगी में तनाव और मुश्किलों के चलते तन, मन और जीवन में सन्तुलन बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तुशास्त्र जीवन के सन्तुलन के लिए भूमि एवं भवन के सन्तुलन का प्रतिपादन करता है। वास्तु के आधारभूत सिद्धान्तों में प्रमुख पंच तत्व पृथ्वी,जल, अग्नि, वायु एवं आकाश तत्वों से मिलकर ही सारी सृष्टि का निर्माण हुआ है। वास्तुशास्त्र आन्तरिक एवं बाह्य सन्तुलन स्थापित कर भवन में एक सामंजस्य स्थापित करता है। वास्तु सम्मत निर्मित मकान को ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की पूर्ति करने वाला घर में बदला जा सकता है।

2.3 वास्तुविद्या की पौराणिक पृष्ठभूमि

पुराणों में वास्तुशास्त्र के उत्पत्ति का प्रसंग प्राप्त होता है। जिसमें एक कथा इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है कि एक समय इस जगत् के जन्म हेतु कमल पर विराजित होने वाले ब्रह्माजी के पास यह पृथ्वी महाराज पृथु के भय से भ्रान्त और चकित हुई, घबराई हुई दर्शन करने को पहुँची। इसी प्रकार समस्त देवताओं के ईश्वर भगवान् ब्रह्माजी को साष्टांग प्रणाम करके उस भूतधात्री, प्राणीमात्र की माता, गौ रूपी पृथ्वी ने गद्गद होकर, रुन्धे गले से पितामह ब्रह्मा को निवेदन किया-

"हे भगवन् ! मैं इन महाराज पृथु के तेज से दुःखी होकर आपकी शरण प्राप्त कर रही हूँ, अतः आप मुझे इससे त्राण प्रदान कीजिये।" इस सन्दर्भ में वायुपुराण में वर्णन निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होता है-

वायुपुराण- वायुपुराणकार का मत है कि क्षत्रियों का अग्रज वेनपुत्र पृथु अपने तेज से जलते हुए की भाँति धनुष एवं कवच धारण किए हुए उत्पन्न हुआ था। उसने अपने अपार साहस से समस्त लोक की रक्षा की थी। राजसूय यज्ञ से अभिषिक्त राजाओं में सारी पृथ्वी का स्वामी वह पृथु ही सर्वप्रथम था। उसकी स्तुति के लिए सूत एवं मागध उत्पन्न हुए। पृथु ने वृत्ति की अभिलाषिणी प्रजाओं के लिए ऋषियों, देवताओं, पितरों, दानवों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों और पर्वतों के समूहों के साथ गौ रूप धारिणी पृथ्वी से अन्न राशियों का दोहन किया। दोहन के समय पृथक् पृथक् पात्रों में दूही गई वसुन्धरा ने दुहने वाले को यथाभिलषित क्षीर प्रदान किया, जिसके द्वारा समस्त लोक की रक्षा सम्भव हो सकी-

वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्तितः।

स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव ।
पृथुर्वैन्यः सर्वलोकान् ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ।
तस्यस्तवार्थमुत्पन्नी निपुण सूतमागधौ ॥

तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता ।
प्रजानां वृत्तिकामानां देवैर्ऋषिगणैः सह ॥

पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ।
सर्वं पुण्यजनैश्चैव वीरुद्धिः पर्वतैस्तथा ॥

तेषु तेषु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा ।
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकांस्त्वधारयत् ॥

(वायुपुराण 62, 95-100)

यह प्रसंग वायुपुराण में आया है कि अनासक्त भाव से समस्त जगत में सर्वदा विचरण करने वाली ब्रह्मचारिणी एवं परम सुन्दरी योगसिद्धा नामक बृहस्पति की भगिनी आठवें वसु प्रभास की भार्या हुई । उसके पुत्र शिल्पियों के प्रजापति (स्रष्टा) विश्वकर्मा हुए ।धर्म के पौत्र उदारबुद्धि विश्वकर्मा परम सुन्दर आकृति वाले हुए। देवताओं के सहस्रों शिल्पकर्मों को करने वाले तथा वास्तुविज्ञान के वेत्ता थे। उन्होंने समस्त देवताओं के विमानों की रचना की । उन्हीं परम महात्मा द्वारा प्रचलित शिल्पकर्म के आश्रय से मनुष्य लोग आज भी अपनी जीविका चलाते हैं । उन विश्वकर्मा की पत्नी विरोचना थी, जो प्रह्लादी नाम से भी विख्यात हुई, वह विरोचन की भगिनी और त्रिशिरा की माता थी । परम बुद्धिमान् विश्वकर्मा देवताओं में शिल्पकर्म के आचार्य थे । उनका पुत्र मय भी उसी प्रकार शिल्पकर्म में निपुण होने के कारण विश्वकर्मा के नाम से विख्यात हुआ । विश्वकर्मा की पुत्री सुरेणु नाम से ख्यात थी जो संज्ञा नाम से सूर्य की पत्नी हुई ।

बृहस्पतेर्या भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता चरते सदा ॥

प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु ।
विश्वकर्मा सुतस्तस्या जातः शिल्पप्रजापतिः ॥

त्वष्टा विराजा रूपाणां धर्मपौत्र उदारधीः ।
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वास्तुकृत् ॥

यः सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह ।
मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥

प्रह्लादी विश्रुता तस्य त्वष्टुः पत्नी विरोचना ।
विरोचनस्य भगिनी माता त्रिशिरसस्तु सा ॥
देवचार्यस्य महतो विश्वकर्माऽस्य धीमतः ।

विश्वकर्मात्मजश्चैव विश्वकर्मा मयः स्मृतः ॥
सुरेणुरिति विख्याता स्वसा तस्य यवीयसी ।
त्वाष्ट्री सा सवितुर्भार्या पुनः संज्ञेति विश्रुता ॥
(वायुपुराण 84, 15-21)

मत्स्य पुराण- पुराणों में, विशेषकर जिन-जिन महापुराणों मे वास्तु विद्या के विवरण मिलते हैं उनका संक्षेप में यहाँ विवरण दिया जा रहा है। यहाँ पर अब हम मत्स्य को लेते हैं। इस पुराण में वास्तु विद्या पर लगभग आठ अध्याय हैं । २५ अध्याय में वास्तुविद्या के प्रसिद्ध प्राचीन अठारह आचार्यों पर प्रकाश डाला गया है। स्तम्भमान विनिर्णय - २५५ अध्याय में स्तम्भ पर विवेचन किया गया है । मत्स्य के अनुसार भवन निर्माण का प्रारम्भ स्तम्भ रचना से प्रारम्भ होना चाहिये। स्तम्भ सम्पूर्ण भवन की योजना एवं रचना का आधार है। स्तंभों को ५ प्रकार के वर्गों में वर्गीकृत किया गया है रुचक, वज्र, द्विवज्र, प्रलीनक तथा वृत्त । इस वर्गीकरण का आधार वास्तु का सौन्दर्य एवं उपयोगिता है। नवताल-लक्षण (२५८), पीठिका-लक्षण (२५२) लिङ्ग-लक्षण (२६१) इन तीनों अध्ययों में प्रस्तर-कला तथा मूर्ति-निर्माण पर विवेचन है। प्रासाद वर्णन (२६९),मण्डप लक्षण (२७०) – इन दो अध्यायों में प्रासाद वास्तु के विवरण मिलते हैं।

स्कन्दपुराण- इस पुराण के माहेश्वर खण्ड (द्वितीय भाग) तथा वैष्णव खण्ड (द्वितीय भाग) में वास्तु विद्या के वर्णन प्राप्त होते हैं। मत्स्य के अनन्तर स्कन्द अधिक प्राचीन है—ऐसा आचार्यों ने माना है। महानगर-स्थापन, स्वर्णशाला, रथनिर्माण, स्थपति-निर्देश, विवाह मण्डप, चित्र-कर्म आदि के जो विवरण मिलते हैं, उनमें वास्तु-विद्या के व्यापक विस्तार पर प्रकाश पड़ता है। वास्तु-कर्म, शिल्प-कर्म का पर्याय हो गया है, अन्यथा रथ - निर्माण आदि तक्षक-कला से सम्बन्धित कर्म, वास्तु-कला (भवन-निर्माण-कला) में कैसे संचालित होते। प्राचीन परम्परा में वास्तु कला एवं पाषाण कला (मूर्ति निर्माण कला) का घनिष्ठ सम्बन्ध है, परन्तु चित्रकला का सम्बन्ध यहीं पर सर्वप्रथम देखने को मिलता है।

गरुड़ पुराण- इस पुराण की वास्तु-विद्या के चार अध्यायों में से दो अध्यायों में (४६-४७) सभी प्रकार के भवनों (मानव एवं दैव) तथा दुर्ग-निवेश एवं पुर-निवेश पर बड़ा ही सुन्दर विवेचन मिलता है। गरुड़पुराण की अपनी विशेषता है। पुर- निवेश तथा उद्यान भवन (गार्डेन सिटीज़) साथ ही परम्परा के अनुरूप प्रासाद एवं प्रतिमा (४५ तथा ४८) पर भी सुन्दर विवेचन है।

अग्निपुराण- इस पुराण में वास्तु विद्या का बड़ा ही विस्तृत विवेचन है। जैसा कि अन्य पुराणों में प्राप्य है। इस पुराण में वास्तु पर सोलह (४२, ४३, ४४, ४५, ४६,४६, ५०, ५१, मे ५२, ५३, ५४, ५५, ६०, ६२, १०४ तथा १०६) अध्यायों में वास्तु विद्या के प्रायः सभी अंगों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुराण में प्रधानता पाषाण कला (मूर्ति-निर्माण) की है, वास्तुकला पर केवल तीन अध्याय तथा मूर्ति निर्माण कला पर तेरह अध्याय है । आचार्यों के मत में अग्निपुराण का पुर निवेश (अध्याय १०६) वास्तुशास्त्र का एक विशिष्ट देन है। इसी प्रकार से अन्य पुराणों में भी वास्तु विद्या की प्रचुर सामग्री भरी है, जिसका विस्तार के भय से विशेष विवरण नहीं दिया जा सकता है। संक्षेपत: पुराणों की वास्तुविद्या की निम्न रूपरेखा अंकित की जा सकती है, जो पूर्ण विकसित कही जा सकती है।

१.वास्तु विद्या के आचार्य,२.वास्तु शैलियाँ, ३. भवन-निवेश, ४. पुर-निवेश,५. दुर्ग-निवेश, ६.प्रासाद- सन्निवेश, ७. भवन- द्रव्य-दार्वाहरण, ८. स्तम्भ मान, ९. ताल मान, १०. प्रतिमा-

लक्षण, ११. दशावतार, १२. लिङ्ग, १३. पीठिका, १४. सभा, १५. मण्डप, १६.उद्यान भवन, १७.वापी – निर्माण, १८.कूप निर्माण, १९.शैल मंदिर, २०. चित्रकला इत्यादि।

2.4 पुराणों में वास्तु का स्वरूप

पुराणों में वास्तुशास्त्र के विभिन्न स्वरूपों का यथा स्थान उल्लेख प्राप्त होता है। कतिपय पुराणों जैसे-अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, नारद पुराण तथा वायु पुराण आदि में प्रासाद बनाने की विद्या बहुत ही सूक्ष्मता तथा स्पष्टता के साथ वर्णित है। अतः हम कह सकते हैं कि अत्यन्त पुरातनकाल से ही भारतवर्ष में वास्तुशास्त्र का ज्ञान प्रचलित रहा है । इस प्रकरण में गृहारम्भ से पूर्व शुभ मुहूर्त्तों का ज्ञान परमावश्यक है। सर्वप्रथम सभी कार्यों को त्यागकर स्तम्भारोपण करना चाहिए ऐसा पुराणों में वर्णन प्राप्त होता है। प्रासाद कूप, बावडियों में भी यही विधि मानी गयी है। चन्द्र और सूर्य के बल के साथ शुभ लग्न, मास, तिथि, वार,नक्षत्र,योग तथा करण के शुभाशुभत्व का निर्धारण मत्स्य पुराण में वर्णित है। भूमि का परीक्षण करने के बाद भवन का निर्माण करने की विधि बतलाई गई है। सर्वप्रथम बारह मासों में जो गृहारम्भ के शुभाशुभ फल का निरुपण करते हैं, का विचार करना चाहिए। चैत्र मास में व्याधि, वैशाख में गाय एवं विभिन्न रत्नों की प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में नौकर, रत्न और पशु वर्ग की प्राप्ति, भाद्रपद में इनका क्षय, आश्विन में पत्नि मरण, कार्तिक में धन एवं धान्य की प्राप्ति, मार्गशीर्ष में रुचिकर भोजन, पौष में चोर-भय, माघ में विविध लाभ एवं अग्निभय, फ़ाल्गुन में सुवर्ण एवं पुत्र लाभ समझना चाहिए। नक्षत्र विभाजन क्रम से अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, और अनुराधा गृहारम्भ में श्रेष्ठ हैं। रविवार और मंगलवार को त्यागकर शेष सभी वार शुभफलदायक है। गृहारम्भ में व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र आदि योगों का त्याग करें। इसी प्रकार श्वेत मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित, रौहिण, वैराज और सावित्र आदि मुहूर्त्त में गृहारम्भ करें। गृहारम्भ से पूर्व भूमि परीक्षण करना चाहिए।

दिशाओं के अनुसार कौन सी दिशा की भूमि उपयुक्त होती है, इस सन्दर्भ में कहा गया है कि यदि पूर्व, ईशान, उत्तर अथवा सब ओर नीची और मध्य में ऊँची भूमि हो तो वह प्रशस्त मानी गयी है। एक हस्त गहराई तक खोदकर निकाली गई मिट्टी यदि फिर से उस गड्ढे में डाली जाने पर अधिक हो जाय तो वहाँ की भूमि को उत्तम समझना चाहिये। अथवा जल आदि से उसकी परीक्षा करें। हड्डी और कोपले आदि से दूषित भूमि का शोधन खोदकर, गायों को ठहराकर या बार-बार जोतकर करना चाहिये-

पूर्वेशोत्तरसर्वत्र पूर्वा चैषां विशिष्यते।
आखाते हास्तिके यस्याः पूर्णे मृदधिका भवेत् ॥

उत्तमां तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षिताम्।
अस्थ्यङ्गारादिभिर्दुष्टामत्यन्तं शोधयेद् गुरुः॥

नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणम् ।
खननैर्गोकुलावासैः कर्षणैर्वा मुहुर्मुहुः॥

(अग्निपुराण,९२/६-७)

मत्स्य पुराण में दुर्गादि के निवेश के लिए भूमि की परीक्षा इस प्रकार बताई गई है- जहाँ निरन्तर

सुगन्धित सहित,स्वादिष्ट, शीतल, सुन्दर कोपलों, अंकुरों से धान्य को उत्पन्न करने वाले खेत हों और वे सीमान्त पर बाड़ आदि से पूरी तरह रक्षित हो, जो भूमि कंकड़, पत्थरों और डिंक्क की बाँबियों से पूरी तरह रहित, निष्कंटक हो, पर्याप्त रूप से जौ का उत्पादन करने वाली और ईंधन युक्त हो और खेतों की सीमान्त पर विभाजित गोचर भूमि से शोभायमान हो। इसी प्रकार जो भूमि लहलहाती घास के सागर के सादृश्य और उसके अन्तराल में चारों ओर स्वादिष्ट, शीतल जल की प्राप्ति के कारण प्रशंसित हो, जो दुष्ट जनों से कभी पादाक्रान्त नहीं होती हो, जहाँ पर नाना प्रकार के गृह बसाये गए हों और जहाँ संरभ या हड़बड़ी या क्षोभजन्य त्रास नहीं हो और मन को प्रसन्नता की प्रतीति होती हो। जैसे-

राजा सहायसंयुक्त: प्रभूतयवसेन्धनम्।
रम्यमानतसामन्तं मध्यमं देशमावसेत्॥

(मत्स्य पुराण,२१७/१-५)

भूमि-मापन - वायुपुराण का मत है कि जब छोटे गाँव पुर, अन्तःपुर, हर्म्य-भवनादि बनाए जाने लगे तो उनकी लम्बाई- चौड़ाई को यथाबुद्धि तय किया गया। उनके दीर्घ-प्रस्थ आदि परिमाण के लिए अङ्गुल के माप द्वारा निर्धारित किए गए। इनका प्रमाण भी दिया गया है। जैसे- दस अंगुल पर्वों का एक प्रदेश कहा गया है। अंगुष्ठ से लेकर तर्जनी तक के विस्तार परिमाण की संज्ञा प्रादेश है। मध्यमा अंगुल पर्यन्त ताल होता है। गोकर्ण अनामिका के अन्त तक परिमाण को गोकर्ण कहा गया है। वित्ता या वितस्ति के लिए कनिष्ठा के अन्त तक का परिमाण होता है। इसका परिमाण बारह अङ्गुल तक होता है। सामान्यतया इक्कीस अंगुलियों के पर्वों का प्रमाण रत्नी होता है। चौबीस अङ्गुलियों के पर्वो का हस्त प्रमाण कहा गया है। दो रत्नियों अर्थात् 42 अङ्गुलियों का प्रमाण किष्कु कहा जाता है। चार हाथ के प्रमाण को धनु दण्ड या नालिका युग कहा जाता है। दो हजार धनुओं के प्रमाण से एक गव्यूति और आठ हजार धनुओं का एक योजन प्रमाण कहा गया है-

दश त्वङ्गुलपर्वाणि प्रदेश: संज्ञितस्तु तैः ॥

अष्टकुल प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ।
तालः स्मृतो मध्यमा गोकर्णश्चाप्यनामया॥

कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुल उच्यते।
रत्निरङ्गुलपर्वाणि संख्या त्वेकविंशतिः॥

चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु।
किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम्॥

चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ।
धनुःसहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥

अष्टो धनुः सहस्राणि योजनं तैनिरुच्यते।
एतेन योजनेनैव संनिवेशस्ततः कृतः ॥

(वायु. 8, 99-107)

वायपुराण में यह संख्या अष्टविंशति रूप में कही गई है। इकाई से लेकर अनन्त तक संख्याओं का ज्ञान परार्ध और पर नाम से कहा गया है। इसमें इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार तक और इसके बाद 10 सहस्र को एक अयुत कहा गया। सौ सहस्र का एक नियुत होता है। दस सौ सहस्र या दस नियुत की एक कोटि, दस कोटि का एक अर्बुद, सौ कोटि का एक पद्म माना गया है। एक सहस्र कोटि का खर्व, दस सहस्र कोटि का निखर्व, सौ सहस्र कोटि का एक शङ्कु माना जाता था। हजार-हजार कोटि को पुनः दस बार गुणित करने पर समुद्र नाम से जाना जाता है। अयुत कोटि का एक मध्य, हजार नियुत कोटि का एक अन्त एवं हजार कोटि का एक परार्द्ध होता है। दो परार्द्ध की एक संख्या मानी गयी है। सौ संख्या को परिदृढ़ एवं हजार को परिषद्मक कहा गया है। इसके बाद अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, स्यर्बुद, खर्व, निखर्व, शङ्कु, पद्म, समुद्र, मध्यम परार्द्ध एवं पर आदि कुल अठारह संख्याएँ मानी गई हैं-

एक दशं शतं चैव सहस्रं चैव संख्यया ॥
विज्ञेयमासहस्रं तु सहस्राणि दशायुतम् ।
एकं शतसहस्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः ॥
तथा शतसहस्राणामर्बुदं कोटिरुच्यते ।
अर्बुदं दशकोट्यस्तु अब्जं कोटिशतं विदुः ॥
सहस्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः ।
दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति तं विदुः ॥
शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते ।
सहस्रं तु सहस्राणां कोटीनां दशधा पुनः ॥
गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः ।
कोटीनां सहस्रमयुतमित्ययं मध्य उच्यते ।
कोटिसहस्रनियुता स चान्त इति संज्ञितः ॥
कोटिकोटिसहस्राणि परार्ध इति किर्त्यते ।
परार्धं द्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः ॥
शतमाहुः परिदृढं सहस्रं परिपद्मकम् ।
विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः ॥
अर्बुदं न्यर्बुदं स्वर्बुदं च ततः स्मृतम् ।
खर्वं चैव निखर्वं च शङ्कं पद्मं तथैव च ॥
समुद्रं मध्यमं चैव परार्धमपरं ततः ।
एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥

(वायुपुराण 101, 93-102)

अमोघवर्ष के शासनकाल में हुए महावीराचार्य (850 ई.) ने इकाई से महाक्षोभ तक गणना की विधि इस प्रकार कही है-

एकं तु प्रथमस्थानं द्वितीयं दशसंज्ञिकम् ।
तृतीयं शतमित्याहुः चतुर्थं तु सहस्रकम् ॥
पञ्चमं दशसाहस्रं षष्ठं स्याल्लक्षमेव च ।
सप्तमं दशलक्षं तु अष्टमं कोटिरुच्यते ॥
नवमं दशकोट्यस्तु दशमं शतकोटयः ।
अर्बुदं रुद्रसंयुक्त न्यर्बुदं द्वादशं भवेत् ॥

खर्वं त्रयोदशस्थानं महाखर्वं चतुर्दशम् ।
पद्मं पञ्चदशं चैव महापद्मं तु षोडशम् ॥
क्षोणी सप्तदशं चैव महाक्षोणी दशाष्टकम् ।
शङ्खं नवदर्श स्थान महाशङ्खं तु विंशकम् ॥
क्षित्यैकविंशतिस्थानं महाक्षित्या द्विविंशकम् ।
त्रिविंशकं क्षोभं महाक्षोभं चतुर्नयम् ॥
(गणितसारसंग्रह, सोलापुर, 1963,1,63-68)

राजप्रासाद निर्माण विधि

पुराणों का सम्यक् अवलोकन के उपरान्त इस विधि में सर्वप्रथम चतुः शाल,त्रिशाल, द्विशाल आदि भवनों के लक्षण, स्वरूप, भेद एवं उनके विशिष्ट नामों का वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण में पाँच-पाँच प्रकार के राजभवन, युवराजभवन, सेनानायकभवन, मन्त्रिभवन, सामन्तप्रासाद, छोटे राजा, और अमात्य, शिल्पकार, कंचुकी, वेश्या, दैवज्ञ, गुरु, वैद्य, सभापति, पुरोहित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अन्यों इत्यादि के भवनों के लक्षण एवं भेद वर्णित है। चतुः शाल चारों और से भवन, द्वार तथा बरामदों से युक्त हो वह 'सर्वतोभद्र' नाम से जाना जाता है। यह देवप्रासाद एवं राजप्रासाद दोनों के लिए सर्वोत्तम एवं मंगलकारक होता है। यदि वह चतुःशाल पश्चिम द्वार से विहीन हो तो 'नन्द्यावर्त', दक्षिण द्वार से हीन हो तो 'वर्धमान 'पूर्वद्वार से हीन हो तो 'स्वस्तिक', उत्तर द्वार से रहित हो तो 'रुचक' नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार से उत्तर दिशा की शाला से विहीन जो त्रिशाल भवन को 'धान्यक' कहा जाता है। वह प्राणियों के लिए कल्याण, वृद्धि, पुत्र लाभकारक होता है। पूर्व की शाला से रहित त्रिशाल भवन को 'सुक्षेत्र' कहते है। वह भवन धन, यश और आयु प्रदाता तथा शोक मोह का विनाश होता. है। जो दक्षिण की शाला से रहित हो उसे 'विशाल' कहा जाता है वह प्राणियों के वंश का नाश, व्याधि और भय प्रदान करने वाला होता है। जो त्रिशाल पश्चिम शाला से विहीन हो उसे 'पक्षघ्न' कहते हैं, वह मित्र, बन्धु और पुत्रों का नाश एवं भयकारक होता है। दक्षिण एवं पश्चिम शालाओं से युक्त द्विशाल भवन को 'धनधान्यप्रद' कहा जाता है। वह मानवों के लिये कल्याण वर्धक तथा पुत्रप्रद होता है। पश्चिम और उत्तर शाला वाले द्विशाल भवन को 'यमसूर्य' कहा जाता है, वह मनुष्यों के लिए नृप भय एवं अग्नि भयकारक और वंश विनाशक होता है। जिस द्विशाल भवन में पूर्व और उत्तर की दो शालाएं हो उसे 'दण्ड' कहा जाता है। वह अकाल मृत्यु तथा शत्रुभयकारक होता है। पूर्व-दक्षिण की शालाओं से युक्त द्विशाल भवन को 'धन' कहते हैं। वह शस्त्रभय तथा पराजय भयदायक होता है। पूर्व पश्चिम की शालाओं युक्त द्विशाल भवन 'चुल्ली' कहलाता है। वह मृत्यु सूचक, महिलाओं के लिए विधवा योग एवं भयकारक होता है। उत्तर-दक्षिण की शालाओं युक्त द्विशाल भवन सर्वथा भयदायक है अतः इस प्रकार के द्विशाल भवन ग्राह्य नहीं है। उत्तमादि भेद से राजप्रासाद 5 प्रकार के होते हैं। 108 हाथ विस्तार वाला राजप्रासाद सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अन्य चार प्रकार के भवनों में विस्तार क्रमशः 8-8 हाथ कम करना चाहिए। परन्तु पाँचों प्रकार के भवनों में लम्बाई विस्तार के चतुर्थांश से अधिक होती है। युवराज के पाँच प्रकार के उत्तमादि भवनों में सर्वप्रथम उत्तम प्रसाद की चौड़ाई 80 हाथ की होती है। और अन्य चार प्रासादों की चौड़ाई 6-6 हाथ कम होती जाती है। उत्तमादि पांच प्रासादों की लम्बाई चौड़ाई से एक तिहाई अधिक बताई गई है। इस प्रकार सेनापति के उत्तमादि पांच प्रसाद में उत्तम प्रासाद की चौड़ाई 64 हाथ ही होती है। अन्य चार भवनों की

चौड़ाई क्रमशः 6-6 हाथ कम करनी चाहिए। उपर्युक्त पाँच प्रासादों की लम्बाई चौड़ाई के षष्ठांश से अधिक होनी चाहिए। पांच प्रकार के मन्त्रियों के उत्तमादि प्रासादों में सर्वप्रथम उत्तम प्रासाद का विस्तार 60 हाथ का होना चाहिए। अन्य चार प्रासादों का क्रमशः 4-4 हाथ कम होते हैं। इन पांच प्रासादों की लम्बाई चौड़ाई के अष्टांश से अधिक मानी गई है। सामन्त, अमात्य आदि के पांच प्रकार के प्रासादों में उत्तम प्रासाद की चौड़ाई 48 हाथ एवं अन्य चार प्रासादों की चौड़ाई क्रमशः चार-चार हाथ कम होती है। इन पांच भवनों की लम्बाई चौड़ाई की तुलना में सवाया अधिक बताई गई है।

द्विशाल गृह लक्षण - पुराण व संहिता ग्रन्थों में इन गृहों का संक्षिप्त वर्णन मिलता है। अपराजितपृच्छा का 94 वाँ अध्याय भी इसी पर आधारित है। विश्वकर्मा जय से बोले द्विशाल भवन बावन प्रकार के होते हैं। इनमें शुभ और अशुभ सभी प्रकार आ जाते हैं। इन सबके लक्षणों को यहाँ क्रमवार कहता हूँ।

सिद्धार्थं यमसूर्यं च दण्डाख्यं वातसञ्ज्ञितम्।
चुल्ली काचं च मुख्यानि द्विशालानि षडैव हि॥

इन मुख्य द्विशाल गृहों की संख्या छह हैं। इन गृहों के नाम हैं- 1. सिद्धार्थ, 2. यमसूर्य, 3. दण्ड, 4. वात, 5. चुल्ली व 6. कांच। मत्स्यपुराणकार का मत है कि दक्षिण-पश्चिम दो शालाओं से युक्त भवन को धन-धान्यप्रद (सिद्धार्थ) कहा जाता है, यह मनुष्यों के लिए कल्याणकारी, पुत्रप्रद होता है। पश्चिम-उत्तरशाला वाला भवन यमसूर्य कहा है जो मनुष्यों के लिए राजा और अग्निभयकारी तथा कुल विनाशक होता है। जिस भवन में केवल पूर्व-उत्तर की ही दो शालाएँ हों, वह दण्ड कहलाता है। यह अकालमृत्यु व शत्रुपक्ष से भयोत्पादक होता है। पूर्व-दक्षिण की शालाओं से युक्त द्विशालभवन धन कहलाता है। यह शस्त्र व पराजय का भय देने वाला है। केवल पूर्व-पश्चिम की ओर बना हुआ चुली संज्ञक द्विशाल भवन मृत्युसूचक, शोककारक होता है। केवल उत्तर-दक्षिण की शाला वाला द्विशालभवन भयकारी होता है अतः उसे नहीं बनवाए-

याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्य फलप्रदम्॥

क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्।
यमसूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्॥

राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत्।
उदक्पूर्वे तु शाले दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत्॥

अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम्।
धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद् शालकम्॥

तच्छत्रभयदं नृणां पराभव भयावहम्।
चुली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी॥

वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम्॥
सिद्धार्थवज्रवर्याणि द्विशालानि सदा बुधैः।

(मत्स्य 254, 8-14)

श्रीमद्भागवत महापुराण में देवताओं के शिल्पकार विश्वकर्मा की कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है, इस विषय में देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण के आदेशानुसार समुद्र के अन्दर द्वारकापुरी नामक अत्यन्त दुर्गम नगर के निर्माण का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें सभी वस्तुएँ विलक्षण थीं और जिसकी लम्बाई-चौड़ाई अड़तालिस कोस की थी। उस नगर की एक-एक वस्तु में विश्वकर्मा का वास्तुकला और शिल्पकला का नैपुण्य प्रकट होता था। उसमें वास्तु के अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियों का यथा स्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था । जैसे-

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम्।
अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत्॥

दृश्यते यत्र त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्।
रथ्या चत्वर वीथिभिर्यथावास्तु विनिर्मितम्॥

वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्य

जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के अट्ठारह प्रवर्तकों का उल्लेख प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार से मत्स्यपुराण में वास्तुशास्त्र के अट्ठारह आचार्यों का नामोल्लेख के साथ-साथ वास्तु पुरुष की उत्पत्ति का विवरण प्राप्त होता है। जैसे-

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ।।8

ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पतिः ।।9

अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
संक्षेपेण उपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा ।।10

इसका आशय है- भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार (कार्तिकेय), नन्दीश्वर, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्राचार्य और बृहस्पति- ये अट्ठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक आचार्य हैं। उपरोक्त अट्ठारह आचार्यों में से वैवस्वत मनु को प्रलयकाल में ही अत्यन्त संक्षेप में मत्स्यावतारी भगवान् ने वास्तुविद्या का उपदेश दिया था। प्रसङ्गवसात् उपरोक्त प्रवर्तक वास्तुशास्त्रियों का ऐतिहासिक परिचय अत्यावश्यक है। अतः संक्षेप में इनका परिचय इस प्रकार है-

भृगु- शुक्राचार्य के पिता भृगुवारुणि थे, ये प्रकाण्ड विद्वान् तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। इनका विवाह हिरण्यकशिपु की पुत्री दिव्या से हुई थी। ये ज्योतिषशास्त्र के भी मूर्धन्य विद्वान् थे।

अत्रि- अत्रिवारुणि इनका पूरा नाम था, ये वरुण देव के तृतीय पुत्र थे। ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य के रूप में भी इनकी ख्याति है।

वसिष्ठ- ये पराशर के पिता थे। इन्हें शक्तिवशिष्ठ के नाम से भी जानते हैं। इनके सम्बन्ध सुदास ऐक्ष्वाक से मधुर थे। ये बाईसवें व्यास थे। जब इनका संघर्ष कल्माषपाद से हुआ तो

उसने इन्हें जला दिया था। कल्मषपाद को ही सौदास भी कहते हैं।

विश्वकर्मा- ये शुक्राचार्य के पुत्र थे, इन्हीं को त्वष्टा भी कहा जाता है। इन्होंने वास्तु और ज्योतिष का ज्ञान अपने पिता से प्राप्त किया था। बृहद्रथ से भी इन्हें कुछ ज्ञान मिला था। इन्द्र ने इनका वध किया था। इनकी माता का नाम 'गौ'था,जो कि सोमप नामक पितृगणों की पुत्री थीं। इनके तीन भाई थे। जिनके नाम क्रमशः वरुत्री, शण्ड तथा मर्क है।

मय- विश्वकर्मा के तृतीय पुत्र मय था। इनकी छोटी बहिन 'सरण्यू' का विवाह विवस्वान् से हुई थी। सूर्यसिद्धान्त में यह प्रसङ्ग आता है कि मय को सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान विवस्वान् से ही प्राप्त हुआ था। सम्प्रति अमरीका महाद्वीप में जिस मय सभ्यता का उल्लेख मिलता है, वह इसी मय जाति की सभ्यता थी। इनके कुल में अनेक शास्त्रज्ञ हुए, जिन्हें 'मय' नाम से जाना जाता रहा है। हमारे धार्मिक ग्रन्थ महाभारत एवं रामायण में यह वर्णन मिलता है कि मय अलग-अलग व्यक्ति थे तथा उन्हें अपनी तपश्चर्या से इस शास्त्र का ज्ञान परम्परा से प्राप्त था। एक अन्य प्रसङ्ग में यह उल्लिखित है कि राक्षसराज रावण का श्वसुर मय तथा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यज्ञभूमि तथा उसकाल में अन्य महलों को निर्मित करने वाले मय भिन्न-भिन्न थे, परन्तु पण्डित भगवदत्त जी के अनुसार वे अलग-अलग नहीं प्रत्युत एक ही थे।

नारद- देवर्षि नारद के विषय में हरिवंशपुराण में एक प्रसङ्ग प्राप्त होता है कि वे पूर्व जन्म में परमेष्ठी प्रजापति के पुत्र थे। तदुपरान्त वे दक्ष प्रजापति के पुत्र के रूप में जन्म लिए। इन्हें कश्यप पुत्र भी कहा जाता है। जिस प्रकार देवर्षि नारद का जन्म एक पहेली है, उसी प्रकार उनकी दीर्घायु तथा बहुमुखी प्रतिभा भी एक पहेली है। ये ज्योतिषशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, वास्तुशास्त्र, संगीत, दर्शनशास्त्र इत्यादि अनेक विषयों एवं विद्याओं के मर्मज्ञ थे। जैसे-

यं कश्यपं सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य दुहितरिदक्षशापभयान्मुनिः॥

महाभारत के अनुसार पर्वत नामक ऋषि इनके भाँजे थे। जैसा कि वर्णन मिलता है-

'नारदो मातुलश्चैव भागिनेयश्च पर्वतः'।

नग्नजित्- इतिहास एवं पुराणों के आलोडन से यह ज्ञात होता है कि नग्नजित् गन्धार नरेश थे। इनका काल महाभारत युद्ध के दो सहस्राब्दी पूर्व अथवा ईस्वी सन् के पाँच सहस्राब्दी पूर्व था। ये आयुर्वेदशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य चरक एवं भेल के गुरु पुनर्वसु आत्रेय के समकालीन थे।

विशालाक्ष- भगवान् शिव का ही दूसरा नाम विशालाक्ष है। इनका समय निर्धारण अप्राप्य है, परन्तु ये सभी विद्याओं के प्रवर्तक माने जाते हैं।

इन्द्र- इन्द्र सप्तमयुगीन व्यास के रूप में जाने जाते थे। इनके पिता प्रजापति परमेष्ठी कश्यप थे। ये सभी देवताओं में छोटे थे। इनका बचपन का नाम शक्र था। इनके गुरु वैवस्वत यम थे, जिनसे इन्होंने इतिहास-पुराण आदि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने कई गुरुओं से विभिन्न प्रकार की विद्याएँ सीखी थीं। आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, वास्तुशास्त्र आदि अनेक विषयों के मर्मज्ञ विद्वान् थे।

ब्रह्मा – इनका कालनिर्धारण अशक्य है; इक्कीस प्रजापतियों को ब्रह्मा नाम से जाना जाता है। ये भी अनेक विद्याओं, शास्त्रों तथा वेदादि के प्रतिष्ठित व्यास माने जाते हैं।

कुमार- स्कन्द एवं कार्तिकेय इनका अन्य नाम भी था। रुद्र नीललोहित शिव के पुत्र के रूप में

हमारे शास्त्रों में वर्णन प्राप्त होता है। जैसे-

अपत्यं कृत्तिकानान्तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः॥

नन्दीश्वर— ये भगवान् श्रीशङ्करजी के प्रमुखतम शिष्य एवं अनुचर थे, इन्होंने अनेक प्रकार के तन्त्रों तथा विद्याओं का ज्ञान भगवान् श्रीशंकर जी से ही प्राप्त किया था। पर्वतीय क्षेत्रों में भवन बनाने की कला में इन्हें विशेष योग्यता प्राप्त थी।

शौनक – ऋषि शुनक के पुत्रगण शौनक कहे जाते हैं।

गर्ग- इनका काल आज से पाँच सहस्राब्दियों पूर्व माना जाता है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के अनुसार ये यदुवंशियों के पुरोहित थे। इन्हें भी ज्योतिषादि अनेक शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त था। जैसे-

गर्गः पुरोहितो राजन् यदूनां तु महातपाः।
ज्योतिषामयनं साक्षाद् तत्तद्ज्ञानमतीन्द्रियम्।
प्रणीतं भवता येन पुमान् वेदपरावरम्॥

वासुदेव- वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य के रूप में वासुदेव थे, जिन्हें हम भगवान् श्रीकृष्ण के नाम से जानते हैं। वसुदेव के पुत्र होने से इन्हें वासुदेव भी कहा जाता था। इनके गुरु सान्दीपनि जी थे। इन्होंने अपने गुरु के आश्रम में सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया था। वास्तुशास्त्र का रहस्यमयी ज्ञान को इन्होंने विश्वकर्मा के पुत्र मय से प्राप्त किया था। इसका उल्लेख 'विश्वकर्मप्रकाश' में भी किया गया है। जैसे-

स विश्वकर्मा जगतीहितायाकथयत् पुनः।
वासुदेवादिषु पुनर्भूलोके भक्तितोऽब्रवीत्॥

अनिरुद्ध – ये भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र थे। इनके पिता प्रद्युम्न थे। ये महाभारत के युद्ध के कुछ काल के बाद तक जीवित थे। इनमें यह विशेषता थी कि कोई भी योद्धा कितना ही बलशाली हो अपने हाथों से पकड़ नहीं सकता था और न ही उन्हें कैद किया जा सकता था, इसीलिये उनका नाम अनिरुद्ध पड़ गया था।

शुक्राचार्य – शुक्राचार्य जी को उशना, काव्य तथा भार्गव के नाम से भी जाना जाता था। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के शासनकाल में ही इनका जन्म हुआ था। कई वर्षों तक ये जीवित थे। वायुपुराण में वर्णित है कि ये भृगुवंशियों के शासक भी बनाये गये थे। जैसे-

भृगूणामधिपञ्चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि कवियों अर्थात् त्रिकालदर्शियों में मैं शुक्राचार्य हूँ – 'कवीनामुशनाकविः'।

शुक्राचार्य अनेक विद्याओं एवं ज्ञान-विज्ञानों में निष्णात थे। इन्हें तृतीय वेदव्यास के रूप में भी जानते हैं। शुक्रनीति इनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों में उनके नाम के अनेक उद्धरण मिलते हैं। एक श्रेष्ठ वास्तुविद् के रूप में भी इनकी ख्याति थी। काव्यमाला नामक ग्रन्थ जो अरबीभाषा तथा हिब्रू भाषाओं में किसी काल में ज्योतिष एवं सामुद्रिक ज्ञान के लिये पूरे

यूरोप में प्रतिष्ठित था। पारसी का प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ जेन्दाअवेस्ता (छन्दावस्था) इन्हीं की कृति है। ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि हैं। अथर्ववेद के अनेक सूक्त शुक्राचार्य के नाम से हैं। ये आयुर्वेद के भी कर्ता थे। सुश्रुत संहिता तथा अष्टांगहृदय में इनके विष नाशक औषधि प्रयोगों का समुल्लेख प्राप्त होता है।

वृहस्पति- इनका दूसरा नाम वृहस्पति अंगिरस भी है। वृहस्पति देवताओं के पुरोहित थे। वेद का अध्ययन इन्होंने ब्रह्मा कश्यप तथा पुराणों का अध्ययन शुक्राचार्य से किया था। शुक्राचार्य की तामसी वृत्ति होने के कारण इनमें आपसी मतभेद था। इनके शिष्य विवस्वान् तथा इन्द्र थे। बृहस्पति का राजा उपरिचरवसु यजमान तथा शिष्य था। ये चौथे वेदव्यास कहे जाते हैं, जिन्होंने वेदमन्त्रों के साथ व्याकरण,अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण तथा वास्तुशास्त्र की रचना की थी।

2.5 सारांश

हिन्दू-संस्कृति बहुत विलक्षण है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णतः वैज्ञानिक है और उनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य मात्र का कल्याण करना है। मनुष्य मात्र का सुगमता से एवं शीघ्रता से कल्याण कैसे हो ? इसका जितना गम्भीर विचार हिन्दू-संस्कृति में किया गया है उतना अन्यत्र नहीं मिलता। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य जिन-जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के सम्पर्क में आ जाता है और जो-जो क्रियाएँ करता है, उन सबको हमारे पौराणिक ऋषि-मुनियों ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से सुनियोजित, मर्यादित एवं सुसंस्कृत किया है और उनक सबका पर्यवसान परमश्रेय की प्राप्ति में किया है। इतना ही नहीं मुनष्य अपने निवास के लिए गृह निर्माण करता है तो उसको भी वास्तुशास्त्र के द्वारा मर्यादित किया है। पुराणों एवं वास्तुशास्त्रों का प्रमुख उद्देश्य भी मनुष्य को कल्याण मार्ग में लगाना है-

"वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया"

शास्त्र की मर्यादा का पालन करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण में ही कल्याण की इच्छा जाग्रत होती है। वास्तुविद्या बहुत प्राचीन विद्या है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी उल्लेख मिलता है। इस विद्या के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो चुके है और जो उपलब्ध विषय हैं,उसमें भी परस्पर मतभेद है। वास्तुविद्या के पौराणिक और वैदिकशास्त्रों में जो उल्लेख है प्राप्त होते हैं, वे क्रमशः - वास्तुविद्या में गृहवास्तु,प्रासादवास्तु, नगरवास्तु,पुरावास्तु,दुर्गवास्तु आदि भेद हैं। प्रस्तुत इकाई में प्राचीन पुराणादि ग्रन्थों में विस्तृत विवेचन जो उपलब्ध है तथा वास्तुशास्त्र की दृष्टि से गृहरचना का विधान किस प्रकार से किया जाता था उनका विस्तार से विवेचन किया गया है। इसमें वास्तुशास्त्र के अनुसार हितोपयोगी गृह किस तरह निर्मित होते थे, उनका विस्तृत विवेचन किया गया है। गृहनिर्माण हेतु भूमिचयन भूमिपरीक्षा, भूमि के प्रकार, भूमि की दिशाएं, महत्त्व, फल, मुहूर्त, शिलान्यास विधि,आयदि निर्णय, गृह के महत्वपूर्ण अंग, गृह में मंदिर तथा गृह मांगलिक गृहनिर्माण योजना,शुभ-अशुभ और शान्ति को ध्यान में रखकर पुराणकारों ने सर्वदा इसी प्रकार की व्यवस्थाऐं दी हैं। उन्हीं के आलोक में गृहों की निर्माण कला पर प्रकाश डालने की अभिलाषा की गई है। इस अध्ययन से मांगलिक गृह निर्माणों के लिए मार्ग प्रशस्त किया जा सकेगा, जो विशुद्ध भारत प्राचीन तकनीकी विद्या को प्रकाशित करेंगे।

2.6 शब्दावली

प्रासाद – भवन।

भू – भूमि।

योजन – वैदिक काल में लम्बाई मापन की इकाई थी। सूर्यसिद्धान्त में 1 योजन को 8 किलोमीटर के बराबर माना गया है। आर्यभट्ट ने 1 योजन को 8 मील के बराबर माना है।

गव्यूति - वैदिक काल में लम्बाई मापन की इकाई थी। 1 गव्यूति = 2000

धनुष। चार गव्यूति एक योजन के बराबर होता है। 2 धनुष = 1 नाडिका।

हस्त = 1 धनुष या दण्ड।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. पुराण में वर्णित वास्तुशास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्यों का उल्लेख कीजिये।
2. वास्तुशास्त्र के पौराणिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिये।
3. वायुपुराण में वर्णित वास्तु के स्वरूप को प्रकाशित कीजिये।
4. पुराणों के अनुसार भूमिचयन की विधि को वर्णित कीजिये।
5. राजप्रासाद निर्माण विधि पर निबन्ध लिखिये।
6. द्विशाल गृहलक्षण को विस्तार से प्रतिपादित कीजिये।

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय वास्तुकला का इतिहास, कृष्णदत्त वाजपेयी,हिन्दी समिति, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 1972।
2. समरांगणसूत्रधार, अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू एवं प्रो. भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2017।
3. मयमतम्, अनुवादक- डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2019।
4. विश्वकर्मप्रकाश, लेखक- महर्षि अभय कात्यायन,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019।
5. वास्तुरत्नवाली, डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, चौखम्बा ओरियंटालिया,दिल्ली,2009।
6. भारतीय वास्तुशास्त्र,महादेव प्रासाद शुक्ल, वास्तु वाङ्मय प्रकाशनशाला, लखनऊ।